अहिंसा : महावीर की दृष्टि में

प्रवक्ता :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच.डी.

श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर - ३०२०१५

संपादक :

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.

प्राचार्य, श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय

ए-४, बापूनगर, जयपुर - ३०२०१५

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-४, बापूनगर, जयपुर - ३०२०१५

फोन : (०१४१) २७०५५८१, २७०७४५८

हिन्दी :

'गागर में सागर' में प्रकाशित	:	२३ हजार ६००
प्रथम बारह संस्करण	:	८० हजार ६००
(जुलाई १९८५ से अद्यतन)		
तेरहवाँ संस्करण	:	१० हजार
(२६ जनवरी, २००६, गणतंत्र दिवस)		
योग	:	१ लाख १४ हजार २००

अंग्रेजी :

तीन संस्करण	:	१० हजार ४००

मराठी :

प्रथम संस्करण	:	५ हजार २००

गुजराती :

दो संस्करण	:	८ हजार २००
महायोग	:	१ लाख ३८ हजार

मूल्य : स्वयं पढें और कम से कम पाँच मित्रों को पढायें।

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

स्व. श्री सौभागमलजी पाटनी की स्मृति में
रवीन्द्र पाटनी फैमिली चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई
दिल्ली प्रवासी) फोन : २३८४४४६२
के सहयोग से
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर
द्वारा वितरित

मुद्रक : जयपुर प्रिंटर्स प्रा. लि. एम.आई. रोड, जयपुर

प्रकाशकीय

(तेरहवाँ संस्करण)

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की महत्त्वपूर्ण कृति 'अहिंसा : महावीर की दृष्टि में' पुस्तक का तेरहवाँ संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। यह कृति हमारे द्वारा अबतक प्रकाशित उनकी कृतियों से कुछ हटकर है।

अबतक प्रकाशित उनकी कृतियाँ स्वयं उनके द्वारा लिखी गई थीं, जबकि यह कृति उनके बहुचर्चित व्याख्यान का सुसम्पादित रूप है।

भगवान महावीर के २५सौवें निर्वाण महोत्सव के समय से आरंभ हुए इस विषय पर उनके प्रवचन की विशेष माँग जैनसमाज में तो रहती ही है, जैनेतर समाज में भी उक्त प्रवचन को काफी सराहा जाता रहा है। इसप्रकार देश-विदेश में शताधिक बार वे इस विषय पर बोल चुके हैं।

जैनधर्म के मूल सिद्धान्त 'अहिंसा' के इस लोकप्रिय व्याख्यान के प्रकाशन की माँग काफी समय से निरन्तर बनी हुई थी। राजस्थान के भूतपूर्व उद्योग व स्वास्थ्य मंत्री स्व.श्री त्रिलोकचन्दजी जैन के विशेष अनुरोध को दृष्टि में रखते हुए डॉ. साहब के टेप प्रवचनों के आधार पर इस व्याख्यान को लिपिबद्ध किया गया और तारण-तरण जयन्ती के अवसर पर मई, १९८५ में 'गागर में सागर' पुस्तक के अन्तिम प्रवचन के रूप में इसे प्रकाशित किया गया। पश्चात् ३ जुलाई, १९८५ को पुस्तकाकार रूप में इसे १० हजार की संख्या में हिन्दी में प्रथम बार प्रकाशित किया गया। पुस्तक का सर्वत्र स्वागत किया गया। तब से अबतक इसके बारह संस्करण हिन्दी में ८० हजार ६०० की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं और अब १० हजार की संख्या में ये तेरहवाँ संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है।

विदेशों में भी जहाँ-जहाँ डॉक्टर साहब गए, इस पुस्तक के अंग्रेजी रूपान्तरण की विशेष माँग की गई, फलतः तीन संस्करण १० हजार ४०० की संख्या में अंग्रेजी में और फिर ५ हजार २०० की संख्या में मराठी तथा ८ हजार २०० की संख्या में गुजराती में भी इसे प्रकाशित किया गया। इसप्रकार हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी व गुजराती में भी अबतक १ लाख १४ हजार ४०० की संख्या में इस कृति का पुस्तकाकार में प्रकाशन हो चुका है। इन सभी के नए संस्करण भी अब प्रकाशनाधीन हैं।

'गागर में सागर' पुस्तक के अन्तिम प्रवचन के रूप में समाहित होने से उक्त पुस्तक के माध्यम से भी यह अबतक २३ हजार ६०० की संख्या में पाठकों तक पहुँच चुकी है। यदि दोनों में मिलाकर योग किया जाए तो कुल प्रकाशन १ लाख ३८ हजार का हो जाता है, जो एक रिकार्ड है।

अहिंसा : महावीर की दृष्टि में

(मंगलाचरण)

जो राग-द्वेष विकार वर्जित लीन आतम ध्यान में।
जिनके विराट् विशाल निर्मल अचल केवलज्ञान में।।
युगपद् विशद् सकलार्थ झलकें ध्वनित हों व्याख्यान में।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में।।

इस मंगलाचरण में भगवान महावीर - वर्द्धमान से ध्यान में विचरण करने की प्रार्थना की गई है।

क्यों?

क्योंकि जैन मान्यतानुसार जो जीव एकबार सिद्धदशा को प्राप्त हो जाता है, वह लौटकर दुबारा संसार में नहीं आता; अतः कवि ऐसी प्रार्थना करके कि - 'एकबार तो आना पड़ेगा, सोते हुए भारत को जगाना पड़ेगा' - अपनी प्रार्थना को निष्फल नहीं होने देना चाहता है।

जो वस्तु चली जाती है, वह लौटकर दुबारा नहीं आती। जैसे - हमारा बचपन चला गया, अब वह लौटकर नहीं आ सकता; पर वह हमारे ध्यान में तो आ ही सकता है, ज्ञान में तो आ ही सकता है।

मेरी बात पर विश्वास न हो तो आप आँख बन्दकर एक मिनट को विचार कीजिए कि जब आप छठवीं कक्षा में पढ़ते थे। होली के अवसर पर एकबार आपने गुब्बारे में पानी भरकर मास्टरजी की कुर्सी पर गद्दी के नीचे रख दिया था।

जब मास्टरजी आये और कुर्सी पर बैठे तो गुब्बारा फटा और पानी का एक फव्वारा छूटा, साथ ही कक्षा में एक हँसी का फव्वारा भी छूट गया था। पता चलने पर आपकी पिटाई भी कम न हुई थी, पर जब आज उस घटना का स्मरण आता है तो फिर वही बचपना मचल उठता है।

ऐसी कोई न कोई घटना आपके बचपन में भी अवश्य घटी होगी। भाई ! जो प्यारा बचपन चला गया, वह तो लौटकर वापस आ नहीं सकता, फिर भी वह हमारे ध्यान में तो आता ही है, ज्ञान में तो आता ही है। ठीक इसीप्रकार भगवान महावीर भी, जो पच्चीस सौ दश वर्ष पूर्व सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो चुके हैं, अब इस संसार में लौटकर वापस नहीं आ सकते; फिर भी हमारे ज्ञान में तो आ ही सकते हैं, ध्यान में तो आ ही सकते हैं।

अतः यहाँ प्रार्थना की गई है कि –

''वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में।।''

आखिर क्यों? जबकि आज का जमाना इतना बेदर्द हो गया है कि मौत कोई मायना नहीं रखती। सड़क के किनारे कोई व्यक्ति मरा या अधमरा पड़ा हो तो उसे देखते हुए हजारों लोग निकल जाते हैं; पर कोई यह नहीं सोचता कि यदि यह मर गया है तो इसके घरवालों को खबर कर दें, यदि अधमरा है तो अस्पताल ही पहुँचा दें, शायद बच जावे। सब यों ही देखते हुए निकल जाते हैं, जैसे कुछ हुआ ही न हो।

आज का यह आदमी न मालूम कितना बेरुखा हो गया है कि मौत का समाचार इसके हृदय को आन्दोलित ही नहीं करता। प्रतिदिन प्रातःकाल लोग चाय पीते-पीते समाचारपत्र पढ़ते हैं। मजे से चाय पीते जाते हैं और पढ़ते जाते हैं कि बिहार में भयंकर बाढ़ आई है, जिसमें एक लाख लोग मारे गये हैं और दश लाख लोग बेघरबार हो गये हैं।

यह समाचार पढ़ते समय इनका हाथ नहीं काँपता, इनके हाथ से चाय का प्याला नहीं छूटता, फूटता भी नहीं है। लोग बड़े ही मजे से चाय पीते जाते हैं और पड़ौसी को समाचार सुनाते जाते हैं कि सुना भाईसाहब आपने! बिहार में भयंकर बाढ़ आई है, एक लाख लोग मारे गये हैं और दश लाख बेघरबार हो गये हैं। यह समाचार वे ऐसे चटकारे ले-लेकर सुनाते हैं, जैसे उनके नगर में कोई नया सर्कस आया हो और वे उसका समाचार सुना रहे हों। यह बात कहते हुए उनके चेहरे पर कोई पीड़ा का निशान नहीं होता।

तात्पर्य यह है कि आज के आदमी में मौत के प्रति संवेदनशीलता नहीं रही है, जो एक जमाने में थी। भाई ! एक जमाना वह था, जब किसी मुहल्ले में यदि गाय मर जाती थी तो सारा मुहल्ला तबतक मुँह में पानी भी नहीं देता था, जबतक कि गाय की लाश न उठ जाये और एक जमाना यह है कि श्मशान में भी ठाठ से चाय चलती है।

लोग शवयात्रा में भी उसी ठाठ-बाट से जाते हैं कि जिससे पता ही नहीं चलता है कि ये किसी की बारात में जा रहे हैं या शवयात्रा में। वैसी ही बातें, वैसी ही हँसी-मजाक; वही राजनैतिक चर्चायें; यदि क्रिकेट का मौसम चल रहा हो, तो बहुतों के हाथ में ट्रांजिस्टर भी मिल जायेगा, स्कोर तो सभी पूछते ही हैं।

न मालूम क्या हो गया है आज की इस दुनिया को? और की बात तो जाने दीजिए, सगे माँ-बाप मरते हैं तो भी आज का आदमी उन्हें तीन दिन से अधिक याद नहीं रख पाता। आज मरे और कल तीसरा दिन होता है। तीसरा दिन हुआ नहीं कि किसान खेत पर चला जाता है, कहता है – बोनी का समय है; दुकानदार दुकान खोल लेता है, कहता है – सीजन चल रहा है; नौकरीपेशा नौकरी पर चला जाता है, कहता है – आकस्मिक अवकाश (सी.एल.) बाकी नहीं है।

जो माँ-बाप जीवनभर पाप करके सम्पत्ति जोड़ते हैं, पाप की गठरी अपने माथे बाँधकर ले जाते हैं और कमाई बच्चों को छोड़ जाते हैं; जब वे बच्चे ही उन्हें तीन दिन से अधिक याद नहीं रख पाते तो और की क्या बात कहें?

ऐसे संवेदनहीन बेदर्द जमाने में, जिसने २५०० वर्ष पहले देह छोड़ी हो, उसे हम २५०० वर्ष बाद भी याद करें, प्रार्थना करें कि –

'वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में।।'

क्या तुक है इसमें?

ऐसा क्या दिया था भगवान महावीर ने हमें, जो हम २५०० वर्ष बाद भी याद करें, उनके गीत गावें?

भौतिकरूप से तो उन्होंने हमें कुछ भी नहीं दिया था। उनके पास था भी क्या, जो हमें देते? वे तो नग्न-दिगम्बर थे, एक लँगोटी भी तो न थी

उनके पास; पर भाईसाहब ! भौतिकरूप से सब-कुछ देनेवालों को भी हम कहाँ याद रखते हैं ? अभी बताया था न कि जो माँ-बाप हमें अपना सर्वस्व दे जाते हैं, हम उन्हें भी कितना याद रख पाते हैं ?

पर हम महावीर को याद तो करते ही हैं, लाखों लोग उनसे ध्यान में विचरण करने की प्रार्थना तो करते ही हैं। ऐसा क्या दिया था उन्होंने हमें? क्योंकि यह स्वार्थी जगत बिना प्रयोजन तो किसी को कभी याद करता ही नहीं है।

उन्होंने हमें कुछ ऐसे सिद्धान्त दिये थे, ऐसा मार्ग बताया था कि जिन्हें हम अपना लेवें, जिस पर हम चलें तो आज भी सुख-शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि भगवान महावीर ने जो रास्ता पच्चीस सौ वर्ष पहले बताया था, हो सकता है कि वह उस युग में किसी काम का रहा हो, पर आज दुनिया बहुत बदल गई है; कहाँ वह बैलगाड़ी का जमाना और कहाँ यह राकेटी दुनिया ? पच्चीस सौ वर्ष पुरानी बातें आज किस काम की ? अतः वे लोग कहते हैं कि आज महावीर आउट ऑफ डेट हो गये हैं।

ऐसे लोगों से मैं कहना चाहता हूँ कि महावीर आउट ऑफ डेट नहीं, आज भी एकदम अप टू डेट हैं। मेरी यह बात शायद उन लोगों को पसन्द न आये, जो ऐसे कपड़े पहिनकर, ऐसे बाल कटाकर कि दूर से देखने पर पता ही न चले कि लड़का है या लड़की, अपने को अप टू डेट समझते हैं; पर ध्यान रहे, कोई व्यक्ति ड्रेस से अप टू डेट नहीं होता, अपितु अपने विचारों से होता है।

जो व्यक्ति ड्रेस से अप टू डेट बनेगा, उसे एक न एक दिन आउट ऑफ डेट होना ही होगा; क्योंकि ड्रेस सदा एक-सी नहीं रहती, बदलती ही रहती है। मेरे पिताजी पगड़ी बाँधा करते थे। जब वे दर्पण के सामने बैठकर पगड़ी बाँधते थे तो एक घण्टे से कम नहीं लगता था। इसीप्रकार जब पगड़ी बाँधकर बाजार से निकलते थे तो अपने को कम अप टू डेट नहीं समझते थे, पर हमने पगड़ी छोड़ दी और टोपी लगाकर अपने को अप टू डेट समझने लगे। हमारे बच्चों ने टोपी भी फेंक दी और अप टू डेट हो गये, हमें आउट ऑफ डेट कर दिया।

भाई ! जो व्यक्ति ड्रेस से अप टू डेट बनेगा, उसे एक न एक दिन आउट ऑफ डेट होना ही होगा। और कोई नहीं, स्वयं के बच्चे ही उसे आउट ऑफ डेट कर देंगे।

जब लोग पगड़ी बाँधते थे तो लोग पगड़ियाँ उछाला करते थे, जब टोपियाँ लगाने लगे तो टोपियाँ उछलने लगीं, पर आज न लोग पगड़ी बाँधते हैं, न टोपी लगाते हैं तो लोगों के बाल ही उड़ने लगे। आपने पुरुष तो गंजे बहुत देखे होंगे, पर महिला एक भी गंजी नहीं देखी होगी। क्या आप जानते हैं कि पुरुष ही गंजे क्यों होते हैं, महिलायें क्यों नहीं?

महिलाओं के सिर पर उड़ने के लिए साड़ी का पल्लू सदा विद्यमान रहता है, पर पुरुषों के सिर पर उड़ने के लिए कोई बाहरी वस्तु देखने में नहीं आती, अतः उनके बाल ही उड़ने लगते हैं। अभी तो बाल ही उड़े हैं, जब बाल भी न रहेंगे तो क्या उड़ेगा? - यह समझने की बात है; अतः समझदारी इसी में है कि हमें उड़ने के लिए कोई एक बाहरी वस्तु सिर पर अवश्य रखनी चाहिए।

जो भी हो, यह बात तो बीच में यों ही आ गयी थी। अपनी बात तो यह चल रही है कि कोई भी व्यक्ति ड्रेस से अप टू डेट नहीं होता, अपितु अपने विचारों से अप टू डेट होता है।

यदि ड्रेस से अप टू डेट मानें, तब भी भगवान महावीर आउट ऑफ डेट नहीं हो सकते; क्योंकि वे विदाउट ड्रेस थे।

मैं धोती-कुर्ता पहिनता हूँ और आप लोग सूट-पैण्ट; पर यह अन्तर तो मात्र ड्रेस का है, ड्रेस के भीतर विद्यमान शरीर तो सबका एक-सा ही है।

इस पर कोई कह सकता है कि शरीर में भी तो अन्तर देखने में आता है कि कोई गोरा है, कोई काला; कोई मोटा है, कोई पतला; कोई लम्बा है, कोई ठिगना।

हाँ, शरीर में भी अन्तर है; पर शरीर के भीतर विद्यमान भगवान आत्मा तो सबका एक जैसा ही है। भाई ! जितना भेद दिखाई देता है; अन्तर दिखाई देता है, वह सब ऊपर-ऊपर का ही है; अन्तर की गहराई में जाकर देखें तो एक महान समानता के दर्शन होंगे।

हाँ, तो मूल बात तो यह है कि कोई व्यक्ति ड्रेस से महान नहीं होता है, अपितु अपने विचारों से महान होता है। भगवान महावीर ने अहिंसा का जो उपदेश आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व दिया था, उसकी जितनी आवश्यकता आज है, उतनी महावीर के जमाने में भी नहीं थी, क्योंकि आज हिंसा ने भयंकर रूप धारण कर लिया है।

कहते हैं कि पहले लोग लाठियों और पत्थरों से लड़ा करते थे। लाठियों और पत्थरों से लड़नेवाले अस्पताल पहुँचते हैं, श्मशान नहीं। तात्पर्य यह है कि घायल होते हैं, मरते नहीं। फिर तलवार का जमाना आया, पर तलवार की मार भी चार हाथ तक की होती है, कोई व्यक्ति दस-बीस मीटर दूर हुआ तो तलवार बेकार है। फिर हमने और भी तरक्की की और गोलियाँ बना लीं, पर वे गोलियाँ भी एक समय में एक आदमी को ही मार सकती थीं तथा उनकी मारक क्षमता भी सौ-दौ सौ मीटर तक ही थी; किन्तु आज हमने ऐसी-ऐसी गोलियाँ बना ली हैं कि एक गोली से चीन साफ हो जाये और दूसरी गोली से भारत। मारक क्षमता का भी इतना विकास कर लिया है कि अमेरिका अपने घर बैठे-बैठे ही एक बटन दबाये तो चीन साफ और दूसरा बटन दबाये तो भारत साफ।

और आप जानते हैं कि ये बटन दबाना भी किन लोगों के हाथ में है? जो दिन में तीन-तीन बोतल मदिरा पान करते हैं। भाई ! जब हम गर्म पानी पीनेवाले लोग भी इतना भ्रमित हो जाते हैं कि बिजली का बटन दबाना चाहते हैं और पंखा चल जाता है, भूल से बगल का बटन दब जाता है; तब उन तीन-तीन बोतल पीनेवालों का क्या कहना? यदि उन्होंने चीन का बटन दबाने की सोची और भूल से भारतवाला बटन दब गया तो क्या होगा? हम सब लोग मुफ्त में ही मारे जायेंगे।

कहते हैं कि अमेरिका ने इतनी विनाशक सामग्री तैयार कर ली है कि यदि वह चाहे तो दुनिया को चालीस बार तबाह कर सकता है। रशिया भी आज इस स्थिति में पहुँच गया है कि पच्चीस बार दुनिया को तबाह तो वह भी कर सकता है। चीन भी आज इस स्थिति में है कि पाँच बार दुनिया की सफाई कर दे। भाई ! सौभाग्य कहो या दुर्भाग्य, आज भारत भी

इस हालत में है कि एकाध बार तो यह काम वह भी निबटा सकता है; पर चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह दुनिया ७१ बार बर्बाद हो - ऐसा मौका कभी नहीं आयेगा, क्योंकि जब यह दुनिया एक बार बर्बाद हो जायेगी तो दुबारा बर्बाद होने को कुछ बचेगा ही नहीं।

एक बार किसी दार्शनिक से पूछा गया कि तीसरा विश्वयुद्ध कैसे लड़ा जायेगा; तो उन्होंने बताया कि तीसरे की बात तो मैं नहीं कह सकता, पर चौथा विश्वयुद्ध लाठियों और पत्थरों से ही लड़ा जायेगा। उनके कहने का तात्पर्य यह था कि यदि तीसरा विश्वयुद्ध हुआ तो वह इतना भयानक होगा कि उसमें सम्पूर्ण दुनिया तबाह हो जायेगी और हम फिर उसी आदम युग में पहुँच जायेंगे, जबकि लोग लाठियों और पत्थरों से लड़ा करते थे; अतः तीसरे विश्वयुद्ध की बात सोचना भी भयानक अपराध है, सामूहिक आत्महत्या का प्रयास है।

भाई ! आज हम बारूद के ढेर पर बैठे हैं, कहीं से भी कोई एक चिनगारी उठे और सारी दुनिया क्षणभर में तबाह हो जाये - इस स्थिति में पहुँच गये हैं। आज हिंसा इतनी खतरनाक हो उठी है, अतः भगवान महावीर की अहिंसा की आवश्यकता भी जितनी आज है, उतनी महावीर के जमाने में भी नहीं थी। भाई ! इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि महावीर आउट ऑफ डेट नहीं हुए हैं, अपितु एकदम अप टू डेट हैं।

रामायण की लड़ाई छह माह चली थी; पर उसमें मरनेवालों की संख्या हजारों में ही थी, लाखों नहीं। महाभारत की लड़ाई मात्र अठारह दिन चली थी; उसमें भी मरनेवालों की संख्या लाखों ही थी, करोड़ों नहीं; पर आज का असली युद्ध यदि अठारह सैकण्ड ही चल जाये तो मरने वालों की संख्या हजारों नहीं, लाखों नहीं; करोड़ों नहीं; अरबों होगी, असंख्य होगी, अनन्त होगी।

पहले के जमाने में युद्ध के मैदान में सिपाही लड़ते थे और सिपाही ही मरते थे; पर आज का युद्ध सिपाहियों तक ही सीमित नहीं रह गया है, युद्ध-मैदानों तक ही सीमित नहीं रह गया है; आज उसकी लपेट में सारी दुनिया आ गयी है। आज की लड़ाइयों में मात्र सिपाही ही नहीं मरते,

किसान भी मरते हैं, मजदूर भी मरते हैं, व्यापारी भी मरते हैं, खेत-खलिहान भी बर्बाद होते हैं, कल-कारखाने भी नष्ट होते हैं, बाजार और दुकानें भी तबाह हो जाती हैं। अधिक क्या कहें, आज के इस युद्ध में अहिंसा की बात कहनेवाले हम जैसे पण्डित और साधुजन भी नहीं बचेंगे, मन्दिर-मस्जिद भी साफ हो जायेंगे। आज के युद्ध सर्वविनाशक हो गये हैं। आज हिंसा जितनी भयानक हो गई है, भगवान महावीर की अहिंसा की आवश्यकता भी आज उतनी ही अधिक हो गई है।

इस स्थिति में भगवान महावीर को आउट ऑफ डेट कहना, अनुपयोगी कहना कहाँ तक उचित है? - यह विचारने की बात है।

आज की लड़ाइयाँ बड़ी वीतरागी लड़ाइयाँ हो गयी हैं। पहिले की लड़ाइयों में मारनेवालों को भी पता रहता था कि मैंने किसको मारा है और मरनेवालों को भी पता रहता था कि मुझे कौन मार रहा है; पर आज न मरनेवालों को पता है कि मुझे कौन मार रहा है, न मारने वालों को ही पता है कि मैं किसे मारने जा रहा हूँ।

ऊपर से राम बम फेंकता है और नीचे उसी का भाई लक्ष्मण मर जाता है और मन्दिर साफ हो जाता है। ऊपर से रहीम बम फेंकता है और नीचे उसी का भाई करीम मर जाता है और मस्जिद साफ हो जाती है। ऊपर से हरमिन्दरसिंह बम फेंकता है और नीचे उसी का भाई गुरमिन्दरसिंह मर जाता है और गुरुद्वारा साफ हो जाता है।

जब कोई किसी पर बम फेंकता है तो यह कोई नहीं कहता कि राम ने रहीम पर बम फेंका है, सभी यही कहते हैं कि अमेरिका ने जापान पर बम फेंका था। तात्पर्य यह है कि बमों की लड़ाई वस्तुतः व्यक्तियों की लड़ाई नहीं, देशों की लड़ाई है। व्यक्तियों की अपेक्षा देशों की लड़ाई अधिक खतरनाक होती है, क्योंकि वह सामूहिक विनाश करती है।

पहले की लड़ाइयाँ व्यक्तियों के बीच होती थीं, फिर परिवारों के बीच होने लगीं। उसके बाद जातियाँ लड़ने लगीं और आज देश लड़ते हैं।

रामायण की लड़ाई दो व्यक्तियों की लड़ाई थी। राम और रावण

दोनों व्यक्ति ही तो थे। रामायण की लड़ाई राम और रावण की लड़ाई ही तो कहलाती है। फिर हम महाभारत के युग में आते हैं। तबतक परिवार लड़ने लगे थे। महाभारत का युद्ध कौरवों और पाण्डवों के बीच हुआ था। कौरव और पाण्डव किसी एक व्यक्ति के नाम नहीं, परिवारों के नाम हैं।

हम और आगे बढ़ें। सन् सैंतालीस में हुए दंगे राम और रहीम के बीच नहीं, हिन्दू-मुस्लिमों के बीच हुए थे। हिन्दू और मुस्लिम दो जातियाँ हैं। सन् १९६५ एवं १९७१ में हुई लड़ाइयाँ श्री लालबहादुर शास्त्री एवं अयूब खाँ और श्रीमती इन्दिरा गाँधी एवं याह्या खाँ के बीच नहीं लड़ी गयी थीं, अपितु ये युद्ध भारत और पाकिस्तान के बीच लड़े गये थे।

भाई ! जब व्यक्ति लड़ते हैं तो व्यक्ति बर्बाद होते हैं, जब परिवार लड़ते हैं तो परिवार बर्बाद होते हैं, जब जातियाँ लड़ती हैं तो जातियाँ बर्बाद होती हैं और जब देश लड़ते हैं तो देश बर्बाद होते हैं।

देश का अर्थ मात्र आदमी नहीं होता है। देश में आदमियों के साथ पशु-पक्षी भी होते हैं, खेत-खलियान भी होते हैं, कल-कारखाने भी होते हैं और मन्दिर-मस्जिद भी होते हैं। देश बर्बाद होने का अर्थ है इन सभी का बर्बाद होना, विनाश होना। भाई, जहाँ अणुबम गिरता है, वहाँ आदमी के साथ-साथ पशु-पक्षी भी मरते हैं, कीड़े-मकोड़े भी मरते हैं, पेड़-पौधे भी नष्ट होते हैं; कहते तो यहाँ तक हैं कि जहाँ अणुबम गिरता है, वहाँ की जमीन भी ऐसी हो जाती है कि हजार वर्ष तक घास भी न उगे।

भाई ! आज हिंसा का भी राष्ट्रीयकरण हो गया है। वह भी व्यक्तिगत नहीं रही है।

विनाश की इस प्रलयंकारी बाढ़ को रोकने में यदि कोई समर्थ है तो वह एकमात्र भगवान महावीर की अहिंसा ही है; अतः मैं कहता हूँ कि भगवान महावीर की अहिंसा की जितनी आवश्यकता आज है, उतनी भगवान महावीर के जमाने में भी नहीं थी; इसलिए कहा जा सकता है कि भगवान महावीर आज भी अप टू डेट हैं।

यह बात तो हुई आज के संदर्भ में भगवान महावीर के अहिंसा सिद्धान्त की उपयोगिता की; पर मूल बात तो यह है कि भगवान महावीर की दृष्टि में अहिंसा का वास्तविक स्वरूप क्या है?

आज यह प्रचलन-सा हो गया है कि जब कोई व्यक्ति अहिंसा की बात कहेगा तो कहेगा कि हिंसा मत करो - बस यही अहिंसा है; पर हिंसा का भी तो वास्तविक स्वरूप कोई स्पष्ट नहीं करता। यदि हिंसा को छोड़ना है और अहिंसा को जीवन में अपनाना है तो हमें हिंसा-अहिंसा के स्वरूप पर गहराई से विचार करना होगा, बिना समझे किया गया ग्रहण-त्याग अनर्थक ही होता है अथवा सम्यक् समझ बिना ग्रहण और त्याग संभव ही नहीं है। जैसा कि कहा गया है -

''संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने[१]'' अथवा **''बिन जाने तैं दोष-गुनन को कैसे तजिए गहिए?[२]''**

अतः हिंसा के त्याग और अहिंसा के ग्रहण के पूर्व उन्हें गहराई से समझना अत्यन्त आवश्यक है।

एकबार महर्षि व्यास के पास कुछ शिष्यगण पहुँचे और उनसे निवेदन करने लगे - ''महाराज ! आपने तो अठारह पुराण बनाये हैं। संस्कृत भाषा में लिखे गये ये मोटे-मोटे पोथन्ने पढ़ने का न तो हमारे पास समय ही है और न हम संस्कृत भाषा ही जानते हैं। हम तो अच्छी तरह हिन्दी भी नहीं जानते हैं तो संस्कृत में लिखे ये पुराण कैसे पढ़ें ? हमारे पास इतना समय भी नहीं है कि हम इन्हें पूरा पढ़ सकें। अतः हमारे हित की बात हमें संक्षेप में समझाइये न?''

उनकी बात सुनकर महाकवि व्यास बोले -

''भाई ! ये अठारह पुराण तो हमने हम जैसों के लिए ही बनाये हैं, तुम्हारे लिए तो मात्र इतना ही पर्याप्त है -

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयं।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

१. महाकवि तुलसीदास : रामचरितमानस
२. कविवर दौलतराम : छहढाला; तीसरी ढाल, छन्द ११

अठारह पुराणों में महाकवि व्यास ने मात्र दो ही बातें कही हैं कि यदि परोपकार करोगे तो पुण्य होगा और पर को पीड़ा पहुँचाओगे तो पाप होगा।

मात्र इतना जान लो, इतना मान लो और सच्चे हृदय से जीवन में अपना लो - तुम्हारा जीवन सार्थक हो जायेगा।''

मानो इसीप्रकार भगवान महावीर के अनुयायी भी उनके पास पहुँचे और कहने लगे कि महर्षि व्यास ने तो अठारह पुराणों का सार दो पंक्तियों में बता दिया; आप भी जैनदर्शन का सार दो पंक्तियों में बता दीजिये न, हमें भी ये प्राकृत-संस्कृत में लिखे मोटे-मोटे ग्रन्थराज समयसार, गोम्मटसार पढ़ने की फुर्सत कहाँ है?

मानो उत्तर में महावीर कहते हैं -

''अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।।[१]

आत्मा में रागादि भावों की उत्पत्ति ही हिंसा है और आत्मा में रागादि भावों की उत्पत्ति नहीं होना ही अहिंसा है - यही जिनागम का सार है।[२]''

आत्मा में रागादि भावों की उत्पत्ति ही हिंसा है - यह कहकर यहाँ भावहिंसा पर विशेष बल दिया है, द्रव्यहिंसा की चर्चा तक नहीं की; अतः यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या महावीर द्रव्यहिंसा को हिंसा ही नहीं मानते हैं? यदि मानते हैं तो फिर सीधे-सच्चे शब्दों में यह क्यों नहीं कहते कि दुनिया में मारकाट का होना हिंसा है और दुनिया में मारकाट का नहीं होना ही अहिंसा?

- यह हिंसा-अहिंसा की सीधी-सच्ची सरल परिभाषा है, जो सबकी समझ में सरलता से आ सकती है; व्यर्थ ही वाग्जाल में उलझाकर उसे दुरूह क्यों बनाया जाता है?

१. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, श्लोक ४४
२. इसीप्रकार की एक गाथा कषायपाहुड़ में प्राप्त होती है, जो इसप्रकार है -
रागादीणमणुप्पा अहिंसगत्तं ति देसिदं समये।
तेसिं चे उप्पत्ती हिंसेति जिणेहि णिद्दिट्ठा।।

भाई ! ऐसी बात नहीं है। भगवान महावीर द्रव्यहिंसा को भी स्वीकार करते हैं। पर उनके आशय को हमें गहराई से समझना होगा।

यह तो आप जानते ही हैं कि हिंसा तीन प्रकार से होती है – मन से, वचन से और काया से।

काया की हिंसा को तो सरकार रोकती है। यदि कोई किसी को जान से मार दे तो उसे पुलिस पकड़ लेगी, उस पर मुकदमा चलेगा और फाँसी की सजा होगी। फाँसी की सजा न हुई तो आजीवन कारावास होगा। न मारे, पीटे तो भी पुलिस पकड़ेगी, मुकदमा चलेगा और दो-चार वर्ष की सजा होगी; पर यदि कोई किसी को वाणी से मारे अर्थात् जान से मारने की धमकी दे, गालियाँ दे, भला-बुरा कहे तो सरकार कुछ नहीं कर सकती।

एकबार मैं पुलिस थाने गया। वहाँ उपस्थित पुलिस इंस्पेक्टर से मैंने कहा – ''इंस्पेक्टर साहब! अमुक व्यक्ति मुझे जान से मारने की धमकी देता है, मुझे जान का खतरा है।''

तब वे बोले – ''इसमें मैं क्या कर सकता हूँ?''

मैंने कहा – ''क्या कहा, आप क्या कर सकते हैं? अरे भाई ! आप इन्तजाम कीजिये। ऐसा कीजिये कि दो सिपाही मेरे साथ कर दीजिये।''

वे मुस्कराते हुए बोले – ''भाई ! यदि हर सामान्य व्यक्ति के साथ दो पुलिसवाले लगाने लगें तो आप जानते हैं कि भारत में साठ करोड़ आदमी रहते हैं, अतः एक अरब और बीस करोड़ पुलिसवाले चाहिए। बोलो, इतनी पुलिस कहाँ से लायें?''

मैंने कहा – ''यह तो आप ठीक ही कहते हैं, पर मैं क्या करूँ? मुझे तो जान का खतरा है।''

बड़ी ही गंभीरता से वे कहने लगे – ''ऐसा कीजिये, आप रिपोर्ट लिखा दीजिये।''

इस पर मैंने कहा – ''इससे क्या होगा?''

तब बड़े ही इत्मीनान से सिगरेट पीते हुए बोले – ''आप चिन्ता न कीजिये। जब आपकी हत्या हो जायेगी, तब उन्हें शीघ्रातिशीघ्र गिरफ्तार कर लिया जायेगा।''

मैंने घबड़ाते हुए कहा – ''अच्छा इन्तजाम है, मरने के बाद होगा, पहले कुछ नहीं हो सकता।''

मायूस-से होते हुए वे कहने लगे – ''भाई! हम क्या करें? आप ही बताइये कि ऐसा कौन-सा कानून है, जिसके तहत हम अपराध हुए बिना ही किसी को गिरफ्तार कर लें, सदा के लिए जेल में डाल दें? अधिक से अधिक यह हो सकता है कि हम गंभीर शिकायत पर उनके जमानत-मुचलके करा लें। इससे अधिक कुछ नहीं हो सकता। आपकी शिकायत पर न तो उन्हें हम गिरफ्तार करके सदा के लिए जेल में ही डाल सकते हैं और न आपके साथ पुलिसवाले ही लगा सकते हैं।''

जब मैंने उक्त स्थिति पर गम्भीरता से विचार किया तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि कानून तो ठीक ही है; क्योंकि हम लोग वाणी से इतने हत्यारे हो गये हैं कि जिसने जीवन में एक भी जीव की हत्या न की होगी, वह भी दिन में वाणी से दस-बीस बार दस-बीस की हत्या तो कर ही डालता है। बात-बात में हम वाणी की हत्या पर उतर आते हैं। रेल में बैठे हों, मोटर में बैठे हों; पास बैठे आदमी से कहेंगे – ''भाई ! जरा उधर सरकना; मैं भी बैठ जाऊँ।''

इस पर वह अकड़ जायेगा। फिर क्या है, आप भी कब पीछे रहने वाले हैं? जोर-जोर से कहने लगते हैं – ''क्या तूने ही टिकट लिया है, हमने टिकट नहीं लिया क्या? चल हट, नहीं अभी खुदा का प्यारा हो जायेगा।''

बात-बात में हर किसी को भगवान के पास भेजने की सोचने लगते हैं, कहने लगते हैं। अब आप ही अपनी छाती पर हाथ रखकर बताइये कि यदि वाणी की हिंसा पर पुलिस-कार्यवाही होने लगे तो हम और आप में से कौन जेल के बाहर रहेगा? चिन्ता करने की बात नहीं है; क्योंकि जेलों में इतनी जगह ही नहीं है कि जहाँ वाणी के हत्यारों को रखा जाये।

भाई ! ये माताएँ-बहिनें हैं न; बड़ी धर्मात्मा, इतनी धर्मात्मा कि प्रातः काल उठेंगी तो स्वयं नहायेंगी, गाय को नहायेंगी, बाल्टी को नहलायेंगी; उसमें निकला दूध पियेंगी। सोचो आप, कितनी धर्मात्मा होंगी?

माघ का महीना हो, भयंकर सर्दी पड़ रही हो, माँ रसोई बना रही हो और उसका दो वर्ष का बालक चौके के बाहर रो रहा हो, माँ के पास जाना चाहता हो; पर माँ कहती है – ''यदि मेरे पास चौके में आना हो तो कपड़े खोलकर आ, अन्यथा मेरा चौका अपवित्र हो जायेगा।''

बच्चा यदि कपड़े खोलता है तो निमोनिया हो जाने का अंदेशा है और कपड़ा नहीं खोलता है तो माँ के पास जाना संभव नहीं है। आखिर बेचारा करे तो क्या करे? अन्त में होता यही है कि वह बालक चौके की सीमा-रेखा का बार-बार उसीप्रकार उल्लंघन करता है, चौके की सीमा पर बार-बार उसीप्रकार छेड़खानी करता है, जिसप्रकार पाकिस्तान काश्मीर की सीमा पर किया करता है।

तथा जिसप्रकार भारत सरकार बार-बार कड़े विरोधपत्र भेजा करती है; उसीप्रकार वह धर्मात्मा माँ भी बार-बार धमकियाँ दिया करती है कि यदि कपड़े खोले बिना चौके की सीमा में प्रवेश किया तो जिन्दा जला दूँगी, जिन्दा। चूले में से जलती हुई लकड़ी निकालकर बच्चे को बार-बार दिखाती हुई धमकाती है, कहती है – ''देख ! यदि कपड़े खोले बिना अन्दर पाँव भी रखा तो समझ ले कि जिन्दा जला दूँगी, जिन्दा .....''

अब मैं आपसे ही पूछता हूँ कि यदि वह बच्चा पुलिस में जाकर रिपोर्ट लिखाये कि मेरी माँ मुझे जिन्दा जलाने की धमकी देती है तो क्या पुलिसवाले उस माँ को भी गिरफ्तार कर लेंगे? शायद यह आपको भी स्वीकृत न होगा।

भाई ! जो माँ अपने बच्चे को जिन्दा जलाना तो दूर, यदि स्वप्न में भी उसकी मात्र अंगुली जलती देख ले तो बेहोश हो जाये, वह माँ भी जब वाणी से इतनी हत्यारी हो सकती है तो फिर दूसरों की क्या कहना? अतः कानून तो ठीक ही है कि वह वाणी की इस हिंसा की उपेक्षा ही करता है; पर बात यह है कि भले ही सरकार न रोके, पर वाणी की हिंसा भी रुकनी तो चाहिए ही।

हाँ, रुकनी चाहिए, अवश्य रुकनी चाहिए। काया की हिंसा को सरकार रोकती है तो वाणी की हिंसा को समाज रोकता है।

कैसे?

जो लोग वाणी का सदुपयोग करते हैं, समाज उनका सन्मान करता है और जो दुरुपयोग करते हैं, समाज उनका अपमान करता है; अपनी सज्जनता के खातिर अपमान न भी करे तो भी कम से कम सम्मान तो नहीं करता।

आप सब बड़े-बड़े लोग नीचे बैठ गये हैं और मुझे यहाँ ऊपर गद्दी पर बिठा दिया है। क्यों, ऐसा क्यों किया आप सबने? इसीलिए न कि मैं आपको भगवान महावीर की अच्छी-अच्छी बातें बता रहा हूँ।

यदि मैं अभी यहीं बैठा-बैठा स्पीकर पर ही आप सबको गालियाँ देने लगूँ तो क्या होगा? क्या आप मुझे इतने सन्मान से दुबारा बुलायेंगे?

नहीं, कदापि नहीं। देखो! यह आपके अध्यक्ष महोदय क्या कह रहे हैं? ये कह रहे हैं कि आप दुबारा बुलाने की बात कर रहे हैं, अरे! अभी तो अभी की सोचो कि अभी क्या होगा?

भाई ! जो व्यक्ति अपनी वाणी का सदुपयोग करता है, समाज उसका सम्मान करता है और जो दुरुपयोग करता है, उसकी उपेक्षा या अपमान। इसप्रकार सम्मान के लोभ से एवं उपेक्षा या अपमान के भय से हम बहुत-कुछ अपनी वाणी पर भी संयम रखते हैं; पर यदि मैं अभी यहीं बैठे-बैठे आप सबको मन में गालियाँ देने लगूँ तो मेरा क्या कर लेंगे आप, क्या कर लेगी समाज और क्या कर लेगी सरकार?

यही कारण है कि भगवान महावीर ने कहा कि न जहाँ सरकार का प्रवेश है और न जहाँ समाज की चलती है, धर्म का काम वहाँ से आरंभ होता है; अतः उन्होंने ठीक ही कहा है कि आत्मा में रागादि की उत्पत्ति ही हिंसा है और आत्मा में रागादि की उत्पत्ति नहीं होना ही अहिंसा है – यही जिनागम का सार है।

भगवान महावीर ने हिंसा-अहिंसा की परिभाषा में 'आत्मा' शब्द का प्रयोग क्यों किया है – यह बात तो स्पष्ट हुई। ध्यान रहे – यहाँ समझाने के लिए आत्मा और मन को अभेद मानकर बात कही जा रही है।

पहले हिंसा आत्मा अर्थात् मन में उत्पन्न होती है। यदि क्रोधादिरूप हिंसा मन में न समाये तो फिर वाणी में प्रकट होती है। यदि वाणी से भी काम न चले तो काया में प्रस्फुटित होती है। हिंसा की उत्पत्ति का यही क्रम है।

अभी अपनी यह सभा शान्ति से चल रही है। पर यदि कुछ लोग इसमें उपद्रव करने लगें तो क्या होगा? चिन्ता करने की कोई बात नहीं है, यहाँ कोई उपद्रव होनेवाला नहीं है; मैं तो अपनी बात स्पष्ट करने के लिए मात्र उदाहरण दे रहा हूँ।

हाँ, तो आप बताइये कि यहाँ अभी उपद्रव होने लगे तो क्या होगा?

होगा क्या? कुछ नहीं। कुछ देर तो कुछ नहीं होगा, जबतक व्यवस्थापकों का क्रोध मन तक ही सीमित रहेगा, तबतक तो कुछ नहीं होगा; पर जब क्रोध उनके मन में समायेगा नहीं तो मेरा व्याख्यान बन्द हो जायेगा और यह स्पीकर व्यवस्थापक महोदय के हाथ में होगा। वे लोगों से कहेंगे कि जिनको सुनना हो, शान्ति से सुनें; यदि नहीं सुनना है तो अपने घर चले जायें, यहाँ उपद्रव करने की आवश्यकता नहीं है।

यदि इतने से भी काम न चले और उपद्रव बढ़ता ही चला जाये तो वे उत्तेजित होकर आदेश देने लगेंगे कि वालिन्टियरो! इन्हें बाहर निकाल दो।

इसप्रकार हम देखते हैं कि क्रोधादि भावोंरूप हिंसा की उत्पत्ति पहले मन में, फिर वचन में और उसके बाद काया में होती है। भगवान महावीर ने सोचा कि चोर से निपटने की अपेक्षा तो चोर की अम्मा से निपट लेना अधिक अच्छा है कि जिससे चोर की उत्पत्ति ही संभव न रहे। यदि हिंसा मन में ही उत्पन्न न होगी तो फिर वाणी और काया में प्रस्फुटित होने का प्रश्न ही उपस्थित न होगा।

अतः भगवान महावीर ने हिंसा के मूल पर प्रहार करना उचित समझा। यही कारण है कि वे कहते हैं कि आत्मा में रागादि की उत्पत्ति होना ही हिंसा है और आत्मा में रागादिभावों की उत्पत्ति नहीं होना ही अहिंसा है।

भाई! एक बात यह भी तो है कि यदि हिंसा एकबार किसी के मन में उत्पन्न हो गई तो फिर वह कहीं न कहीं प्रगट अवश्य होगी।

एक मास्टरजी थे। यदि कोई मास्टरजी यहाँ बैठे हों तो नाराज मत होना। वैसे मैं भी तो मास्टर ही हूँ। चिन्ता की कोई बात नहीं है।

हाँ ! तो एक मास्टरजी थे। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा है कि आज रोटी जरा जल्दी बनाना, मुझे स्कूल जल्दी जाना है।

मास्टरनी बोली – ''आज रोटी जल्दी नहीं बन सकती, क्योंकि जयपुर से एक दुबले-पतले से पण्डित आये हैं; मैं तो उनका प्रवचन सुनने जाऊँगी।''

मास्टरजी गर्म होते हुए बोले – ''मैं कुछ नहीं समझता, रोटी जल्दी बननी चाहिए।''

बेचारी मास्टरनी घबड़ा गई, आधा प्रवचन छोड़कर आई, जल्दी-जल्दी रोटी बनाई; पर जबतक रोटी बनती, तबतक मास्टरजी का माथा मास्टरनी के तवे से भी अधिक गर्म हो गया था और रोटी बन जाने पर भी मास्टरजी बिना रोटी खाये ही स्कूल चले गये।

अब आप ही बताइये कि मास्टरनी को कितना गुस्सा आया होगा? प्रवचन भी छूटा और मास्टरजी भी भूखे गये, पर क्या करे? मास्टरजी तो चले गये, घर पर बेचारे बच्चे थे; उसने उनकी धुनाई शुरू कर दी।

गुस्सा तो मास्टरजी को भी कम नहीं आ रहा था, क्योंकि भूखे थे न; पर स्कूल में न तो मास्टरनी ही थी और न घर के बच्चे, पराये बच्चे थे; उन्होंने उनकी धुनाई आरंभ कर दी।

भाई ! यदि हिंसा एकबार आत्मा में – मन में उत्पन्न हो गई तो फिर वह कहीं न कहीं प्रकट अवश्य होगी; अतः भगवान महावीर ने कहा कि बात ऐसी होनी चाहिए कि हिंसा लोगों के मन में – आत्मा में ही उत्पन्न न हो – यही विचार कर उन्होंने हिंसा-अहिंसा की परिभाषा में यह कहा कि आत्मा में रागादिभावों की उत्पत्ति होना ही हिंसा है और आत्मा में रागादिभावों की उत्पत्ति नहीं होना ही अहिंसा है।

भगवान महावीर का पच्चीससौवाँ निर्वाण वर्ष था। सारे भारतवर्ष में निर्वाण महोत्सव के कार्यक्रम बड़े जोर-शोर से चल रहे थे। भगवान महावीर का धर्मचक्र एवं एक हजार यात्रियों को साथ लेकर हम भी सारे देश में

भगवान महावीर का संदेश देते फिर रहे थे। उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम के सभी तीर्थों की तीन मास तक यात्रा करते हुए अन्त में गुजरात पहुँचे।

वहाँ की एक सभा में भगवान महावीर के इसी अहिंसा सन्देश को हम जनता जर्नादन तक पहुँचा रहे थे कि अध्यक्ष पद पर विराजमान महानुभाव बोले -

''यह तो ठीक, पर आप तो यह बताइये कि यह हिंसा रुके कैसे?''

हमने कहा - ''हाँ, बताते हैं; यह भी बताते हैं। सुनिये तो सही ! इस गुजरात प्रान्त में शराबबन्दी लागू है, फिर भी लोग शराब तो पीते ही हैं। अब आप ही बताइये कि यह शराबबन्दी सफल कैसे हो?''

हमने अपनी बात को विस्तार देते हुए कहा कि - ''एक उपाय तो यह है कि बाजार में कोई व्यक्ति शराब पीकर डोलता हो तो उसे पुलिसवाले पकड़ लें, दो-चार चाँटे मारें, जेब में दश-बीस रुपये हों, उन्हें छीनकर छुट्टी कर दें; तो क्या शराबबन्दी सफल हो जावेगी?''

''नहीं, कदापि नहीं।''

''तो क्या करना होगा?''

''जबतक उन होटलों पर छापा नहीं मारा जायेगा, जिन होटलों में यह अवैध शराब बिकती है, तबतक सफलता मिलना संभव नहीं है।''

''हाँ, यह बात तो ठीक है; पर पुलिस उन होटलों पर छापा मारे, दश-बीस बोतल शराब मिले, मिल-बाँट कर उसे पी लें और दो-चार सौ रुपये लेकर उसकी छुट्टी कर दें तो भी क्या शराबबन्दी सफल हो जायेगी?''

''नहीं, इससे भी कुछ होनेवाला नहीं है।''

''तो क्या करना होगा?''

''जबतक उन अड्डों को बर्बाद नहीं किया जायेगा, नष्ट-भ्रष्ट नहीं किया जायेगा, जिन अड्डों पर लुक-छिपकर यह अवैध शराब बनाई जाती है, तबतक सफलता मिलना असंभव ही है; क्योंकि यदि अड्डों पर शराब बनेगी तो मार्केट (बाजार) में आयेगी, आयेगी, अवश्य आयेगी; जायेगी कहाँ? जब मार्केट में आयेगी तो लोगों के पेट में भी जायेगी,

अन्यथा जायेगी कहाँ? जब लोगों के पेट में जायेगी तो उनके माथे में भी भन्नायेगी ही।

यदि हम चाहते हैं कि शराब लोगों के माथे में न भन्नाये तो हमें इन्तजाम करना होगा कि वह लोगों के पेट में न जाये; यदि हम चाहते हैं कि शराब लोगों के पेट में न जाये तो हमें इन्तजाम करना होगा कि वह मार्केट में न आये; यदि हम चाहते हैं कि वह मार्केट में न आये तो हमें इन्तजाम करना होगा कि वह बने ही नहीं। भाई ! इतना किए बिना काम नहीं चलेगा।

इसीप्रकार यदि हम चाहते हैं कि हमारे जीवन में हिंसा प्रस्फुटित ही न हो तो हमें उसे आत्मा के स्तर पर, मन के स्तर पर ही रोकना होगा; क्योंकि यदि आत्मा या मन के स्तर पर हिंसा उत्पन्न हो गई तो वह वाणी और काया के स्तर पर भी प्रस्फुटित होगी ही।

यही कारण है कि भगवान महावीर बात की तह में जाकर बात करते हैं और कहते हैं कि यदि हिंसा को रोकना है तो उसे आत्मा और मन के स्तर पर ही रोकना होगा। जबतक लोगों के दिल साफ नहीं होंगे, जबतक लोगों की आत्मा में निर्मलता नहीं होगी; तबतक हिंसा के अविरल-प्रवाह को रोकना संभव न होगा।

यह बात तो यह हुई कि हिंसा-अहिंसा की परिभाषा में 'आत्मा' शब्द का उपयोग क्यों किया गया है। पर अब बात यह है कि भगवान महावीर रागादि भावों की उत्पत्ति को ही हिंसा कह रहे हैं।

भाई ! जिस रागभाव अर्थात् प्रेमभाव को सारा जगत अहिंसा माने बैठा है, भगवान महावीर उस रागभाव को ही हिंसा बता रहे हैं। बात जरा खतरनाक है; अतः सावधानी से सुनने की आवश्यकता है।

जैनदर्शन में प्रतिपादित अहिंसा की इसी विशेषता के कारण कहा जाता रहा है कि अन्य दर्शनों की अहिंसा जहाँ समाप्त होती है, जैनदर्शन की अहिंसा वहाँ से आरंभ होती है।

सारी दुनिया कहती है कि प्रेम से रहो और महावीर कहते हैं कि यह प्रेम - यह राग भी हिंसा है। है न अद्भुत बात ! पर सिर हिलाने से काम नहीं चलेगा, बात को गहराई से समझना होगा। न तो इस बात से असहमत

होकर उपेक्षा करने से ही बात बनेगी और न बिना समझे स्वीकार कर लेने से कुछ होनेवाला है। बात को बड़े ही धैर्य से गहराई से समझना होगा।

सुनो ! डॉक्टर दो प्रकार के होते हैं – कलम के और मलम के। शोध-खोज करनेवाले पीएच.डी. आदि कलम के डॉक्टर हैं और ऑपरेशन करनेवाले मलम के डॉक्टर हैं।

जब कोई मलम का डॉक्टर किसी मरीज का ऑपरेशन करता है तो मरीज होता है एक और डॉक्टर होते हैं कम से कम दो तथा चार नर्सें भी साथ होती हैं; मरीज रहता है बेहोश और डॉक्टर रहते हैं होश में।

अतः ऑपरेशन के समय यदि मरीज मर जाये तो सम्पूर्ण जिम्मेदारी एक प्रकार से डॉक्टर की ही होती है; पर जब वाणी का डॉक्टर ऑपरेशन करता है तो डॉक्टर होता है अकेला और मरीज होते हैं – हजार-दो हजार, दश-पाँच हजार भी हो सकते हैं; डॉक्टर के साथ मरीज भी पूरे होश में रहते हैं। अतः यदि कोई हानि हो तो मरीज और डॉक्टर दोनों की समानरूप से जिम्मेदारी रहती है।

डॉक्टर किसी मरीज का ऑपरेशन कर रहा हो; मरीज की बेहोशी उतनी गहरी न हो, जितना गहरा ऑपरेशन हो रहा हो; – ऐसी स्थिति में कदाचित् मरीज को ऑपरेशन के बीच में ही होश आ जाये तो क्या होगा? सोचा है कभी आपने?

यदि मरीज डरपोक हुआ तो ऑपरेशन की टेबल से भागने की कोशिश करेगा और यदि क्रोधी हुआ तो डॉक्टर को भी भगा सकता है; पर ध्यान रहे – ऐसी हालत में चाहे मरीज भागे, चाहे डॉक्टर को भगाये, मरेगा मरीज ही, डॉक्टर मरनेवाला नहीं है; अतः भला इसी में है कि जो भी हो, तबतक चुपचाप लेटे रहने में ही मरीज का लाभ है, जबतक कि ऑपरेशन होकर टाँके न लग जायें; लग ही न जायें, अपितु लगकर, सूखकर डॉक्टर द्वारा खोल न दिये जायें।

भाई ! यह कहकर कि रागादिभावों की उत्पत्ति ही हिंसा है, प्रेमभाव भी हिंसा ही है, मैंने आप सबका पेट चीर दिया है। यह सुनकर किसी को अरुचि उत्पन्न हो सकती है, किसी को क्रोध भी आ सकता है; कोई सभा छोड़कर भी जा सकता है, कोई ताकतवर मेरा बोलना भी बन्द करा

सकता है; पर ध्यान रहे, चाहे आप भागें, चाहे मुझे भगा दें; नुकसान आपका ही होगा, मेरा नहीं।

अतः भला इसी में है कि अब आप चुपचाप शान्ति से तबतक बैठे रहें, जबतक कि बात पूरी तरह साफ न हो जाये, स्पष्ट न हो जाये।

हाँ, तो भाई! बात यह है कि महावीर रागभाव को, प्रेमभाव को भी हिंसा कहते हैं। भाई! जिसे तुम प्रेम से रहना कहते हो, शान्ति से रहना कहते हो; वह प्रेम ही तो अशान्ति का वास्तविक जनक है, हिंसा का मूल है।

यह तो आप जानते ही हैं कि दुनिया में सर्वाधिक द्रव्यहिंसा युद्धों में ही होती है और युद्ध तीन कारणों से ही होते रहे हैं। वे तीन कारण हैं – जर, जोरू और जमीन। जर माने रुपया-पैसा, धन-सम्पत्ति; जोरू माने पत्नी – स्त्री और जमीन तो आप जानते ही हैं।

रामायण का युद्ध जोरू के कारण ही हुआ था। राम की पत्नी को रावण हर ले गया और रामायण का प्रसिद्ध युद्ध हो गया।

इसीप्रकार महाभारत का युद्ध जमीन के कारण हुआ था।

पाण्डवों ने कौरवों से कहा – ''यदि आप हमें पाँच गाँव भी दे दें तो हम अपना काम चला लेंगे।''

पर कौरवों ने उत्तर दिया – ''बिना युद्ध के सुई की नोंक के बराबर भी जमीन नहीं मिल सकती।''

बस फिर क्या था? महाभारत मच गया।

'पैसे के कारण भी युद्ध होता है' – यह बात सिद्ध करने के लिए भी क्या पुराणों की गाथाएँ खोजनी होंगी, इतिहास के पन्ने पलटने होंगे; विशेषकर व्यापारियों की सभा में, जिनकी सारी लड़ाइयाँ पैसों के पीछे ही होती हैं, जिनका मौलिक सिद्धान्त है कि चमड़ी जाये, पर दमड़ी न जाये।

भाई ! यह आपकी ही बात नहीं है। आज तो सारी दुनिया ही व्यापारी हो गई है। डॉक्टरी जैसा सेवा का काम भी आज व्यापार हो गया है। धर्म के नाम पर भी अनेक दुकानें खुल गई हैं।

आज तो सभी लड़ाइयाँ व्यापार के लिए ही लड़ी जाती हैं। एक देश दूसरे देश पर आक्रमण भी उस देश में अपना व्यापार स्थापित करने के लिए ही करता है। बड़े देश छोटे देशों को हथियार बेचने के लिए उन्हें आपस में भिड़ाते रहते हैं।

इसप्रकार हम देखते हैं कि जगत में जितने भी युद्ध होते हैं, वे प्रायः जर, जोरू और जमीन के कारण ही होते हैं।

अब मैं आपसे ही पूछता हूँ कि जर, जोरू और जमीन के कारण जो युद्ध होते हैं; वे जर, जोरू और जमीन के प्रति राग के कारण होते हैं या द्वेष के कारण?

यह बात तो हाथ पर रखे आँवले के समान स्पष्ट है कि जर, जोरू और जमीन के प्रति राग के कारण ही युद्ध होते हैं, द्वेष के कारण नहीं।

रामायण के युद्ध के सन्दर्भ में विचार करें तो श्री रामचन्द्रजी को तो महारानी सीता से अगाध स्नेह (राग) था ही, पर रावण को भी द्वेष नहीं था। यदि द्वेष होता तो वह सीताजी का हरण न करता, उन्हें घर न ले जाता, सभी प्रकार की सुविधाएँ प्रदान नहीं करता, स्वयं को स्वीकार कर लेने के लिए प्रार्थनाएँ न करता और इसप्रकार के प्रलोभन भी नहीं देता कि तुम मुझे स्वीकार कर लो, मैं तुम्हें पटरानी बनाऊँगा, मन्दोदरी से भी अधिक सम्मान दूँगा।

यह सब उसके राग को ही सूचित करता है, द्वेष को नहीं। इसप्रकार की प्रवृत्ति राग का ही परिणाम हो सकती है, द्वेष का नहीं।

यद्यपि यह सत्य है कि रावण का यह प्रेम वासनाजन्य परस्त्री-प्रेम होने से सर्वथा अनुचित है; पर है तो प्रेम ही, राग ही। अतः सहज ही सिद्ध है कि रामायण का युद्ध नारी के प्रति प्रेम के कारण ही हुआ था, नारी के प्रति राग के कारण ही हुआ था।

इसीप्रकार कौरवों को तो जमीन से राग था ही, पर पाण्डवों को भी जमीन से राग ही था, द्वेष नहीं; अन्यथा वे पाँच गाँव भी क्यों माँगते?

इस पर आप कह सकते हैं कि आप क्या बात करते हैं, वे बिचारे रहते कहाँ? पर मैं कहता हूँ कि रहने के लिए गाँवों की क्या आवश्यकता

है? मेरे पास तो एक इंच जमीन भी नहीं है, पर मैं तो बड़े आराम से रह रहा हूँ, उन्हें गाँवों की क्या आवश्यकता थी? वनवास के काल में भी तो वे बारह वर्ष तक बिना गाँवों के रहे थे, आखिर अब क्या आवश्यकता आ पड़ी थी, जो गाँव माँगने लगे और न मिलने पर युद्ध पर उतारू हो गये।

पर भाईसाहब! सच्ची बात तो यह है कि उनके मन में भी राग था कि न सही चक्रवर्ती सम्राट, पाँच गाँव के जमींदार तो बन ही जायेंगे।

इसप्रकार हम देखते हैं कि महाभारत की लड़ाई भी जमीन के प्रति राग के कारण ही लड़ी गई थी।

पैसों के पीछे जो लड़ाइयाँ होती हैं, वे भी पैसों के प्रति राग के कारण ही होती हैं, द्वेष के कारण नहीं।

अतः यह सहज ही सिद्ध हो जाता है कि युद्धों में होनेवाली सर्वाधिक द्रव्यहिंसा के मूल में राग ही कार्य करता है। यही कारण है कि भगवान महावीर ने रागादिभावों की उत्पत्ति को हिंसा कहा है और रागादिभावों की उत्पत्ति नहीं होने को अहिंसा घोषित किया है।

मात्र युद्धों में होनेवाली हिंसा ही नहीं, अपितु खान-पान एवं भोग-विलास में होनेवाली हिंसा के मूल में भी मुख्यरूप से राग ही कार्य करता है। मांसभक्षी लोग उसी प्राणी का मांस खाते हैं, जिसका मांस उन्हें अच्छा लगता है। प्रिय भोजन में प्राणियों का सहज अनुराग ही देखा जाता है, द्वेष नहीं। अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण के मूल में भी लोलुपता अर्थात् राग ही कार्य करता है।

लोग व्यर्थ ही कहते हैं कि बिल्ली को चूहे से जन्म-जात वैर है, पर यह कैसे संभव है? क्या किसी को अपनी प्रिय भोज्य सामग्री से भी वैर होता है? बिल्ली तो चूहे को बड़े चाव से खाती है। आप ही बताइये, क्या आपको शुद्ध, सात्त्विक, प्रिय आहार से द्वेष है, जो आप उसे चबाकर खा जाते हैं?

भाई ! जिसप्रकार आप अपने योग्य शुद्ध, सात्त्विक, प्रिय खाद्य पदार्थों को प्रेम से खाते हैं; उसीप्रकार सभी प्राणी अपनी-अपनी भोज्य-सामग्री का रागवश ही उपभोग करते हैं।

अतः यह सहज ही सिद्ध होता है कि खान-पान संबंधी हिंसा में भी राग ही मूल कारण है।

इसीप्रकार पाँचों इन्द्रियों के भोग भी राग के कारण ही भोगे जाते हैं। क्रूरतम हिंसा से उत्पन्न शृंगार-सामग्रियों के उपयोग के मूल में भी राग ही कार्य करता देखा जाता है। जिन्दा पशुओं की चमड़ी उतारकर बनाई गई चमड़े की वस्तुओं का उपयोग भी अज्ञानी जीव प्रेम से ही करते हैं, उनके प्रति आकर्षण का कारण राग ही है। रेशम के कीड़ों को उबाल कर बनाई जानेवाली रेशम की साड़ियाँ भी महिलायें रागवश ही पहिनती हैं।

भाई ! अधिक क्या कहें? अकेली हिंसा ही नहीं, पाँचों पापों का मूल कारण एकमात्र रागभाव ही है। लोभरूप राग के कारण ही लोग झूठ बोलते हैं, चोरी करते हैं, परिग्रह जोड़ते हैं।

झूठ बोलकर लोगों को ठगनेवाले लोग पैसे के प्रति ममता के कारण ही तो ऐसा करते हैं। चोर सेठजी की तिजोरी, उसमें रखे पैसों के लोभ के कारण ही तोड़ता है, सेठजी के प्रति द्वेष के कारण नहीं। यदि उसे सेठ से द्वेष होता तो वह सेठजी की तिजोरी नहीं तोड़ता, खोपड़ी खोलता। इसीप्रकार समस्त बाह्य परिग्रह जोड़ने के मूल में बाह्य वस्तुओं के प्रति राग ही कार्य करता है।

माता-बहिनों की इज्जत भी रागी ही लूटते हैं, द्वेषी नहीं। इतिहास उठाकर देख लो, आजतक जितनी भी माता-बहिनों की इज्जत लुटी है, वह रागियों ने ही लूटी है, द्वेषियों ने नहीं। आप प्रतिदिन प्रातःकाल समाचारपत्र पढ़ते हैं। उनमें यह लिखा तो मिलता है कि एक गोरी-भूरी सुन्दर युवती क्रीम-पाउडर लपेटे, तंग वस्त्र पहिने, हँसती-खेलती तितली-सी बनी बाजार में जा रही थी तो कुछ कॉलेजी लड़कों ने उससे छेड़खानी की; पर आपने यह कभी नहीं पढ़ा होगा कि एक काली-कलूटी, सफेद बालों वाली, घिनौनी-सी गंदी लड़की रोती-रोती सड़क पर जा रही थी और उससे किसी ने छेड़खानी की।

भाई ! छेड़खानी का पात्र भी वही होता है, जिसे देखकर हमें राग उत्पन्न हो।

इसप्रकार हम देखते हैं कि पाँचों पापों की मूल जड़ एकमात्र रागभाव

ही है। यही कारण है कि कविवर पण्डित दौलतरामजी छहढाला में लिखते हैं -

''यह राग आग दहै सदा तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय-कषाय अब तो त्याग निज पद बेइये।।''

भाई ! यह राग तो ऐसी आग है, जो सदा जलाती ही है।

जिसप्रकार आग सर्दियों में जलाती है, गर्मियों में जलाती है; दिन को जलाती है, रात को जलाती है; सदा जलाती ही है; उसीप्रकार यह राग भी सदा दुःख ही देता है।

जिसप्रकार आग चाहे नीम की हो, चाहे चंदन की; पर आग तो जलाने का ही काम करती है। ऐसा नहीं है कि नीम की आग जलाये और चन्दन की आग ठंडक पहुँचाये। भाई ! चन्दन भले ही शीतल हो, शीतलता पहुँचाता हो; पर चन्दन की आग तो जलाने का ही काम करेगी। भाई ! आग तो आग है; इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता कि वह नीम की है या चन्दन की।

उसीप्रकार राग चाहे अपनों के प्रति हो या परायों के प्रति हो; चाहे अच्छे लोगों के प्रति हो या बुरे लोगों के प्रति हो; पर है तो वह हिंसा ही, बुरा ही। ऐसा नहीं है कि अपनों के प्रति होनेवाला राग अच्छा हो और परायों के प्रति होनेवाला राग बुरा हो अथवा अच्छे लोगों के प्रति होनेवाला राग अच्छा हो और बुरे लोगों के प्रति होने वाला राग बुरा हो। अच्छे लोगों के प्रति भी किया गया राग भी हिंसा होने से बुरा ही है।

भाई ! इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। भगवान महावीर की यह अद्‌भुत बात जैनदर्शन का अनोखा अनुसंधान है। जबतक इस बात को गहराई से नहीं समझा जायेगा, तबतक महावीर की अहिंसा समझ में आना संभव नहीं है।

भाई ! भगवान महावीर ने रागादिभावों की उत्पत्ति मात्र को हिंसा बताकर एक अद्‌भुत रहस्य का उद्‌घाटन किया है। अपनी पुरानी मान्यताओं को एक ओर रखकर पवित्र हृदय से यदि समझने का प्रयास किया जाये तो इस अद्‌भुत रहस्य को भी समझा जा सकता है, पाया जा सकता है, अपनाया जा सकता है और जीवन में जिया भी जा सकता है।

यदि हम यह कर सके तो सहज सुख-शान्ति को भी सहज ही उपलब्ध कर लेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं।

राग के अतिरिक्त द्वेषादि के कारण भी जो हिंसा होती देखी जाती है, उसके भी मूल में जाकर देखें तो उसका कारण भी राग ही दृष्टिगोचर होगा।

हम इस बात पर गहराई से विचार करें कि जिस द्वेष के कारण यह द्रव्यहिंसा हुई है, वह द्वेष किस कारण से उत्पन्न हुआ था; तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि जिस व्यक्ति से हमें राग था, उसके प्रति असद्व्यवहार के कारण अथवा जिस वस्तु से हमें अनुराग था, उस वस्तु की प्राप्ति में बाधक होने के कारण ही वह द्वेष उत्पन्न हुआ था।

यदि कोई व्यक्ति हमारे परोपकारी गुरु की निन्दा करता है या हम पर सर्वस्व लुटानेवाले माँ-बाप से असद्व्यवहार करता है तो उस व्यक्ति से हमें सहज ही द्वेषभाव हो जाता है। यदि उस व्यक्ति के प्रति हम से कोई हिंसात्मक व्यवहार होता है तो उसे हम द्वेषमूलक हिंसा कहेंगे; पर गहराई में जाकर विचार करें तो स्पष्ट ही प्रतीत होगा कि हमारे इस हिंसात्मक व्यवहार के पीछे वह राग ही कार्य कर रहा है, जो हमारे हृदय में हमारे गुरु या माता-पिता के प्रति विद्यमान है।

इस तरह गहराई में जाकर विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि द्वेषमूलक हिंसा भी मूलतः रागमूलक ही है।

यद्यपि 'राग' शब्द बहुत व्यापक है, उसमें आत्मा में उत्पन्न होने वाले सभी विकारीभाव समाहित हो जाते हैं। मिथ्यात्व सहित सम्पूर्ण मोह को, जिसमें द्वेष भी सम्मिलित है, राग कहा जाता है; तथापि यहाँ 'राग' शब्द के साथ 'आदि' शब्द का प्रयोग करके द्वेषादि विकारों का पृथक् रूप से भी संकेत कर दिया है।

यदि कोई कहे कि 'रागादि' के स्थान पर 'द्वेषादि' शब्द का प्रयोग किया जाता तो कोई विवाद नहीं रहता; क्योंकि द्वेष को तो हिंसा का कारण सभी मानते हैं। ऐसी स्थिति में राग 'आदि' शब्द में समाहित हो ही जाता। इसतरह हम अपनी बात भी रख देते और दुनिया को वह खटकती भी नहीं।

अरे भाई ! यदि 'राग' शब्द का उल्लेख स्पष्ट रूप से न होता तो राग में धर्म माननेवाले लोग उसे हिंसा स्वीकार ही न करते; अतः बात अस्पष्ट

ही रह जाती। यही कारण है कि यहाँ 'राग' शब्द का स्पष्ट उल्लेख किया गया है और द्वेषादि को 'आदि' शब्द में समाहित किया गया है। वक्र और जड़ शिष्य संकेतों की भाषा से नहीं समझते, उनके लिए तो जितनी अधिक स्पष्टता की जाये, उतनी ही कम है।

इतनी सावधानी रखने पर भी लोग यह कहते देखे जाते हैं कि राग से तात्पर्य मात्र अशुभराग से है, तीव्रराग से है; शुभराग से, मन्दराग से नहीं।

पर भाई ! इतना तो सोचो कि जब भगवान महावीर ने हिंसा की परिभाषा में 'राग' शब्द का प्रयोग किया होगा, क्या तब उन्हें उसके व्यापक अर्थ का ध्यान न रहा होगा? क्या वे यह नहीं जानते होंगे कि राग दो प्रकार का होता है - शुभ और अशुभ अथवा मंद और तीव्र?

इस पर कुछ लोग कहते हैं कि विषय कषाय का राग हिंसा है - यह तो ठीक है, पर धर्मानुराग को हिंसा कैसे कहा जा सकता है?

भाई ! राग तो राग है, वह किसके प्रति है - इससे उसके रागपने में क्या अन्तर पड़ता है? जिस धर्मानुराग को तुम हिंसा की परिधि से बाहर रखना चाहते हो, उसी धर्मानुराग ने विश्व में कितनी खून की नदियाँ बहाई हैं - क्या इसकी जानकारी नहीं है आपको?

इतिहास के पन्ने पलटकर तो देखो, धर्मानुराग के नाम पर ही लाखों यहूदियों को मौत के घाट उतार दिया गया। हमारी आँखों के सामने होनेवाले हिन्दू-मुसलमानों के दंगे, सिया-सुन्नियों के दंगे धर्मानुराग के ही परिणाम हैं। दूर क्यों जाते हो, दिगम्बर-श्वेताम्बरों के झगड़ों के पीछे भी तो यही धर्मानुराग कार्य करता है।

भाई ! अविवेक का भी कोई ठिकाना है? हम अहिंसा धर्म की भी रक्षा जान की बाजी लगाकर करना चाहते हैं। जान की बाजी लगाने से अहिंसा धर्म की रक्षा नहीं होती है, हिंसा उत्पन्न होती है। आज हम इस स्थूल सत्य को भी भूले जा रहे हैं।

भाई ! धर्मानुराग धर्म का प्रकार नहीं, राग का प्रकार है; अतः धर्म नहीं, राग ही है; धर्म तो एक वीतरागभाव ही है।

भाई ! गजब हो गया है; वीतरागी जैनधर्म में भी आज राग को धर्म माना जाने लगा है। जब पानी में ही आग लग गई हो, तब क्या किया जा सकता है?

भगवान महावीर तो स्वयं वीतरागी थे, वे राग को धर्म कैसे कह सकते हैं? भाई ! जब कोई वीतरागी बनता है तो सम्पूर्ण राग का अभाव करके ही बनता है, सबके प्रति राग तोड़कर ही बनता है; किसी के भी प्रति राग रखकर, कैसा भी राग रखकर वीतरागी नहीं बना जा सकता।

भाई ! सीधी-सी बात है कि यदि वीतरागता धर्म है तो राग अधर्म होगा ही।

इतना सीधी सच्ची बात भी हमारी समझ में नहीं आती। भाई ! पूर्वाग्रह छोड़े बिना यह बात समझ में नहीं आ सकती।

भाई ! मैं एक बात कहूँ। बेटे तीन प्रकार के होते हैं। इसे हम इसप्रकार समझ सकते हैं –

आप चार व्यक्ति किसी काम से मेरे घर पधारे। मैंने आपको आदरपूर्वक बिठाते हुए अपने बेटे को आवाज दी –

''भाई, परमात्मप्रकाश ! एक गिलास पानी लाना।''

आदत है न एक गिलास बोलने की; पर चतुर बेटा समझता है कि भले ही एक गिलास कहा है; पर अतिथि तो चार हैं न और एक पिताजी भी तो हैं। इसप्रकार वह पाँच गिलास भरकर लाता है, साथ में एक भरा हुआ जग (लोटा) भी लाता है; क्योंकि वह जानता है कि गर्मियों के दिन हैं, कोई दो गिलास पानी भी पी सकता है; कोई दूध या चाय तो है नहीं, जो माँगने में संकोच करेगा।

दूसरा बच्चा वह है, जो मात्र एक गिलास ही पानी लाता है। टोकने पर जवाब देता है कि आपने ही तो कहा था कि एक गिलास पानी लाना। बड़ा आज्ञाकारी है न ! जब एक गिलास कहा था तो अधिक कैसे ला सकता था?

तीसरा वह है, जो आधा गिलास पानी ही लाता है। पूछने पर उत्तर देता है कि 'मैंने सोचा-छलक न जाये, झलक न जाये।'

भाई ! हम सभी भगवान महावीर की सन्तान हैं। अब जरा विचार कीजिए कि हम भगवान महावीर के कौन से बेटे हैं- पहले, दूसरे या तीसरे?

भगवान ने कहा था – ''रागादिभाव हिंसा हैं।''

उनके इस कथन का आशय पहला बेटा यह समझता है कि सभी प्रकार का शुभाशुभ, मंद-तीव्र राग तो हिंसा है ही, साथ में द्वेषादि भाव भी हिंसा ही हैं।

दूसरे बेटे वे हैं, जो कहते हैं कि हम तो अकेले राग को ही हिंसा मानेंगे, क्योंकि स्पष्ट रूप से तो राग का ही उल्लेख है।

उनसे यदि यह कहा जाये कि 'राग' के साथ 'आदि' शब्द का भी तो प्रयोग है तो कहते हैं कि है तो; पर यह कैसे माना जाये कि आदि से द्वेषादि ही लेना, सम्यग्दर्शनादि नहीं।

तीसरे वे हैं, जो कहते हैं कि भगवान ने यदि राग को हिंसा कहा है तो हमने अशुभराग-तीव्रराग को हिंसा मान तो लिया। यह जरूरी थोड़े ही है कि हम सम्पूर्ण राग को हिंसा मानें। लिखा भी तो अकेला रागादि ही है, यह कहाँ लिखा कि सभी रागादि हिंसा हैं?

अब आप ही निश्चित कीजिए कि आप भगवान महावीर के कौन से पुत्र हैं – पहले, दूसरे या तीसरे? मुझे इस बारे में कुछ नहीं कहना है। यह निर्णय मैं आप सब पर ही छोड़ता हूँ।

इसप्रकार हम देखते हैं कि भगवान महावीर ने हिंसा और अहिंसा के स्वरूप के स्पष्टीकरण में राग शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में किया है, सभी प्रकार का राग तो उसमें समाहित है ही, राग के ही प्रकारान्तर द्वेषादि परिणाम भी उसमें समाहित हैं।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि क्या रागादिभाव की उत्पत्ति मात्र से ही हिंसा हो जाती है, चाहे जीव मरे या न मरे? क्या जीवों के मरण से हिंसा का कोई सम्बन्ध नहीं है?

हाँ, भाई ! बात तो ऐसी ही है; पर जगत तो यही कहता है कि जबतक प्राणियों का घात न हो, जीवों का मरण न हो; तबतक हिंसा कैसे हो सकती है, तबतक हिंसा की उत्पत्ति कैसे मानी जा सकती है?

यह भोला जगत तो हिंसा का सम्बन्ध मृत्यु से ही जोड़ता है; परन्तु गंभीरता से विचार करें तो बात दूसरी ही नजर आती है।

यदि जीवों के मरण को हिंसा माना जायेगा तो फिर जन्म को अहिंसा मानना होगा; क्योंकि हिंसा और अहिंसा के समान जन्म और मृत्यु भी परस्पर विरोधी भाव हैं। जन्म को अहिंसा और मरण को हिंसा मानने पर यह बात स्वतः समाप्त हो जाती है कि आज जगत में हिंसा अधिक फैलती जा रही है; क्योंकि जन्म और मृत्यु का अनुपात तो सदा समान ही रहता है; जो जन्मता है, वही तो मरता है तथा जो मरता है, वह तत्काल कहीं न कहीं जन्म ले लेता है।

इससे बचने के लिए यदि कोई कहे कि मृत्यु का विरोधी जन्म नहीं, जीवन है; तो बात और भी अधिक जटिल हो जायेगी, उलझ जायेगी; क्योंकि व्यक्ति जिन्दा तो वर्षों तक रहता है और मरण तो क्षणिक अवस्था का ही नाम है।

इसप्रकार मृत्यु को हिंसा और जीवन को अहिंसा मानने पर अहिंसा का पलड़ा और भी अधिक भारी हो जायेगा, जबकि यह बात सभी एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि आज हिंसा बहुत बढ़ती जा रही है।

भाई ! न जन्म अहिंसा है, न जीवन अहिंसा है; और न मृत्यु हिंसा है। मृत्यु तो प्राणधारियों का सहज स्वभाव है, (मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्) वह हिंसा कैसे हो सकती है? लोक में हिंसकभाव के बिना हुई मृत्यु को हिंसा कहा भी नहीं जाता है।

बाढ़ आने पर लाखों लोगों के मर जाने पर भी यह तो कहा जाता है कि भयंकर विनाश हुआ, बर्बादी हुई, जन-धन की अपार हानि हुई; परन्तु यह कभी नहीं कहा जाता कि हिंसा का ताण्डव नृत्य हुआ। पर उपद्रवों को शान्त करने के लिए पुलिस द्वारा गोली चलाये जाने पर यदि एक भी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो कहा जाता है कि हिंसा का ताण्डव नृत्य हुआ। अखबारों के मुख पृष्ठ पर बड़े-बड़े अक्षरों में छपता है, जनता गली-गली में नारे लगाती है कि हत्यारी सरकार इस्तीफा दे। बाढ़ में हुए विनाश पर सरकार को कोई हत्यारा नहीं कहता।

भारतीय जनता इस तथ्य से भली-भाँति परिचित है, उसके रोम-रोम में यह सत्य समाया हुआ है, उसके अन्तर में अहिंसा के प्रति एक गहरी आस्था आज भी विद्यमान है।

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि भोपाल (म.प्र.) की गैस दुर्घटना में हजारों लोगों के मर जाने के बाद भी वहाँ शासक दल ने दो-तिहाई से भी अधिक बहुमत प्राप्त किया; किन्तु राजस्थान में पुलिस की गोली से एक व्यक्ति के मर जाने पर मुख्यमंत्री को अपना पद छोड़ना पड़ा।

श्रीमती इन्दिरा गाँधी की अमानुषिक हत्या पर जनता की यही प्रतिक्रिया रही। भारतीय जनता ने उनकी अमानुषिक हत्या अर्थात् हिंसा के विरुद्ध चुनाव में अपना स्पष्ट मत व्यक्त किया। परिणाम-स्वरूप इन्दिरा कांग्रेस को अभूतपूर्व विजय प्राप्त हुई। इस सत्य से सभी भली-भाँति परिचित हैं कि यदि श्रीमती इन्दिरा गाँधी स्वयं चुनाव लड़तीं तो इतना बहुमत उन्हें भी मिलनेवाला नहीं था।

वस्तुतः यह इन्दिरा कांग्रेस या श्री राजीव गाँधी की जीत नहीं, हिंसा के विरुद्ध अहिंसा की जीत है। भारतीय जनता ने स्पष्ट रूप से हिंसा के विरुद्ध अहिंसा के पक्ष में अपना मत व्यक्त किया है।

इससे प्रतीत होता है कि बहुत गहराई में जाकर भारतीय जनता आज भी भगवती अहिंसा की आराधक है, उसकी रग-रग में भगवती अहिंसा उसीप्रकार समाई हुई है, जिसप्रकार तिल में तेल और दूध में घी।

प्राकृतिक विनाश भारतीय जनता के चित्त को करुणा-विगलित तो करता है, उसमें एक संवेदना पैदा तो करता है; पर वह उसके चित्त को उद्वेलित नहीं करता, आन्दोलित नहीं करता; किन्तु बुद्धिपूर्वक की गई हिंसा से वह आन्दोलित हो जाता है, उद्वेलित हो जाता है, वह भड़क उठता है।

हत्यारों के प्रति यह आक्रोश भारतीय जनता की अहिंसा में गहरी आस्था को ही व्यक्त करता है।

भारतीय जनता की अहिंसा के प्रति गहरी समझ एवं दृढ़ आस्था को समझने के लिए हमें उसके अन्तर में उतरना होगा, उसके व्यवहार का बारीकी से अध्ययन करना होगा; ऊपर-ऊपर से देखने से काम नहीं चलेगा।

भगवान महावीर भारतीय जनता के अन्तर में समाहित हो गये हैं। भारतीय जनता पर उनकी पकड़ बहुत गहरी है।

भाई ! मृत्यु विनाश हो सकती है; हत्या नहीं, हिंसा नहीं। सरकारी कानून भी इस बात को स्वीकार करता है। किसी व्यक्ति ने किसी को जान से मारने के इरादे से गोली चला दी, पर भाग्य से यदि वह न मरे, बच भी जाये; तथापि गोली मारनेवाला तो हत्यारा हो ही जाता है; पर बचाने के अभिप्राय से ऑपरेशन करनेवाले डॉक्टर से चाहे मरीज ऑपरेशन की टेबल पर ही क्यों न मर जाये; पर डॉक्टर हत्यारा नहीं कहा जाता, नहीं माना जाता।

यदि मृत्यु को ही हिंसा माना जायेगा तो फिर डॉक्टर को हिंसक तथा मारने के इरादे से गोली चलानेवाले को हिंस्य व्यक्ति के न मरने पर अहिंसक मानना होगा, जो न तो उचित ही है और न उसे अहिंसक माना ही जाता है। इसका अभिप्राय यही है कि हिंसा का संबंध मृत्यु के होने या न होने से नहीं है, हिंसकभावों के सद्भाव से है।

मान लो, मैं किसी स्थान पर इसीप्रकार व्याख्यान दे रहा हूँ। सामने से किसी ने पत्थर मारा, वह पत्थर मेरे कान के पास से सनसनाता हुआ निकल गया।

मैंने उससे कहा – ''भाई ! यह क्या करते हो, अभी मेरा माथा फूट जाता तो···?

वह अकड़कर कहने लगा – ''फूटा तो नहीं; फूट जाता, तब कहते...।

मैंने समझाते हुए कहा – ''भाई ! तब क्या कहते? तब तो अस्पताल भागते।''

भाई ! अज्ञानी समझते हैं कि हिंसा तब होती, जब माथा फूट जाता; पर मैं आप से ही पूछता हूँ कि क्या हिंसा मेरे माथे में भरी है, जो उसके फूटने पर निकलती? हिंसा मेरे माथे में उत्पन्न होनी थी या उसके हृदय में उत्पन्न हो गई है ? हिंसा तो उसके हृदय में उसी समय उत्पन्न हो गई थी, जब उसने मारने के लिए पत्थर उठाया ही था।

हिंसा की उत्पत्ति हिंसक के हृदय में होती है, हिंसक की आत्मा में होती है, हिंस्य में नहीं। – इस बात को हमें अच्छी तरह समझ

लेना चाहिए।

हत्या के माध्यम से उत्पन्न मृत्यु को द्रव्यहिंसा कहा जाता है, पर सहज मृत्यु को तो द्रव्यहिंसा भी नहीं कहा जाता। भावहिंसापूर्वक हुआ परघात ही द्रव्यहिंसा माना जाता है, भावहिंसा के बिना किसी भी प्रकार की मृत्यु द्रव्यहिंसा नाम नहीं पाती।

जब कोई व्यक्ति हिंसा का निषेध करता है, हिंसा के विरुद्ध बात करता है तो उसके अभिप्राय में भावहिंसा ही अपेक्षित होती है; क्योंकि अहिंसक जगत में मृत्यु का नहीं, हत्याओं का अभाव ही अपेक्षित रहता है।

भाई ! यहाँ तो इससे भी बहुत आगे की बात है। यहाँ मात्र मारने के भाव को ही हिंसा नहीं कहा जा रहा है, अपितु सभी प्रकार के रागभाव को हिंसा बताया जा रहा है, जिसमें बचाने का भाव भी सम्मिलित है।

इसके सन्दर्भ में विशेष जानने के लिए लेखक का ''अहिंसा[१]'' नामक निबंध पढ़ना चाहिए।

भाई ! दूसरों को मारने या बचाने का भाव उसके सहज जीवन में हस्तक्षेप है। सर्वप्रभुतासम्पन्न इस जगत में पर के जीवन-मरण में हस्तक्षेप करना अहिंसा कैसे माना जा सकता है? अनाक्रमण के समान अहस्तक्षेप की भावना भी अहिंसा में पूरी तरह समाहित है। यदि दूसरों पर आक्रमण हिंसा है तो उसके कार्यों में हस्तक्षेप भी हिंसा ही है, उसकी सर्वप्रभुतासम्पन्नता का अनादर है, अपमान है।

भगवान महावीर के अनुसार प्रत्येक आत्मा स्वयं सर्वप्रभुतासम्पन्न द्रव्य है, अपने भले-बुरे का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व स्वयं उसका है; उसमें किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप वस्तुस्वरूप को स्वीकार नहीं है। इस परम सत्य की स्वीकृति ही भगवती अहिंसा की सच्ची आराधना है।

भगवती अहिंसा भगवान महावीर की साधना की चरम उपलब्धि है, उनकी पावन दिव्यध्वनि का नवनीत है, जन्म-मरण का अभाव करने वाला रसायन है, परम-अमृत है।

भाई ! यदि सुखी होना है तो इस परमामृतरस का पान करो, इस

१. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पृष्ठ १८५

परमरसायन का सेवन करो।

जब हम इस परमामृत पान की पावन प्रेरणा देते हैं तो कुछ लोग कहने लगते हैं – ''आपकी बातें तो बहुत अच्छी हैं, पर अकेले हमारे अहिंसक हो जाने से क्या होनेवाला है, क्योंकि अकेला चना तो भाड़ फोड़ नहीं सकता। अतः पहले सारी दुनिया को यह अहिंसा समझाओ, स्वीकार कराओ; बाद में हम भी स्वीकार कर लेंगे।''

हमारा उनसे कहना यह है कि भाई ! अहिंसा तो अमृत है; जो इस अमृत के प्याले को पियेगा, वह अमर होगा, सुखी होगा, शान्त होगा।

भाई ! इस पावन अहिंसा को यदि व्यक्ति अपनायेगा तो व्यक्ति सुखी होगा, परिवार अपनायेगा तो परिवार सुखी होगा, समाज अपनायेगा तो समाज सुखी होगा और देश अपनायेगा तो देश सुखी होगा।

अतः दूसरों पर टालने की अपेक्षा 'भले काम को अपने घर से ही आरम्भ कर देना चाहिए' की लोकोक्ति के अनुसार हमें अहिंसा को सच्चे दिल से समझने एवं जीवन में अपनाने का कार्य स्वयं से ही आरम्भ कर देना चाहिए।

अधिक क्या कहें? भाई ! सभी प्राणी भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित इस अहिंसा सिद्धान्त को गहराई से समझें; मात्र समझें ही नहीं, जीवन में अपनायें और सहज सुख-शान्ति को प्राप्त करें – इस पावन भावना से विराम लेता हूँ। ●

हिंसा और अहिंसा

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि राग-द्वेष-मोह भावों की उत्पत्ति होना ही हिंसा है और उन्हें धर्म मानना महाहिंसा है तथा रागादि भावों की उत्पत्ति नहीं होना ही परम-अहिंसा है और रागादि भावों को धर्म नहीं मानना ही अहिंसा के सम्बन्ध में सच्ची समझ है। – यही जिनागम का सार है।

– तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पृष्ठ १९३

महावीर वन्दना

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं।।
जो तरण-तारण भव-निवारण, भव जलधि के तीर हैं।
वे वंदनीय जिनेश तीर्थंकर, स्वयं महावीर हैं।।

जो राग-द्वेष विकार वर्जित, लीन आतम ध्यान में।
जिनके विराट विशाल निर्मल, अचल केवलज्ञान में।।
युगपद् विशद सकलार्थ झलकें, ध्वनित हों व्याख्यान में।
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में।।

जिनका परम पावन चरित, जलनिधि समान अपार है।
जिनके गुणों के कथन में, गणधर न पावे पार है।।
बस वीतराग-विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मती को, वंदना शत बार है।।

जिनके विमल उपदेश में, सबके उदय की बात है।
समभाव समताभाव जिनका, जगत में विख्यात है।।
जिसने बताया जगत को, प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्त्ता न धर्त्ता कोई है, अणु-अणु स्वयं में लीन है।।

आतम बने परमात्मा हो, शान्ति सारे देश में।
है देशना सर्वोदयी, महावीर के सन्देश में।।

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल